तत्पर होकर तीर्थ–यात्रा के लिए समुद्र –पर्यन्त पृथिवी के चारों ओर विचरा'

।। 3।। 4।।

एतावताऽथ कालेन संसारावस्थामिमां हरन्।
समुद्भूतो मनसि मे विचारः सोऽयमीदृशः।।

5।।

'इस बीच में इस संसार पर आस्था को हरनेवाला यह विचार मेरे मन में उत्पन्न हुआ, जिसे मैं आपके सामने उपस्थित करता हूँ'।। 5।।

अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचर चेष्टिताः।
आपदां पतयः पापा भावा विभवभूमयः।।

2।।

'चर और अचरों की चेष्टाओं से युक्त वैभवकाल में रहनेवाले ये जितने भोग के पदार्थ हैं, ये आपत्तियों के ही स्वामी अर्थात् मूल हैं और पाप के हेतु हैं।'

मृगतृष्णा जल की तरह

असतैव वयं कष्टं विकृष्टा मूढबुद्धयः।
मृगतृष्णाम्भसा दूरे वने मुग्धमृगा इव।।

11।।

'जैसे मरीचिका को जल समझकर मुग्ध मृग वन में बड़ी दूर तक इधर–उधर भटकते रहते हैं फिर भी कुछ नहीं मिलता है, हम मूढबुद्धि लोग भी वैसे ही इस संसार में असत् पदार्थों को सुख के साधन समझ– कर इधर–उधर खूब भटकते रहते हैं, पर हाथ कुछ नहीं लगता।'

न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिता।
बत मूढा वयं सर्वे जानाना अपि शाम्बरम्।।

12।।

किमेतेषु प्रपञ्चेषु भोगा नाम सुदुर्भगाः।
मुधैव हि वयं मोहात् संस्थिताः बद्धभावनाः।।

13।।

'यद्यपि हम लोग किसी के द्वारा बेचे नहीं गए हैं, तथापि बेचे गए प्राणियों के समान परवश होकर बैठे हुए हैं। अत्यन्त खेद है कि माया को जानते हुए भी मूढ़ ही हैं क्योंकि उसकी चिन्ता नहीं करते'।। 12।।

'इस संसाररूप प्रपंच में ये जो अभागे लोग हैं वे कौन वस्तु हैं कि हम लोग उनके व्यर्थ मोह में या भ्रान्ति में बद्ध होकर अवस्थित हैं।। 13।।

शाम्यतीदं कथं दुःखमिति तप्तोऽस्मि चिन्तया।
जरद् द्रुम इवोग्रेण कोटरस्थेन वह्निना।।

21।।

संसारदुःखपाषाण नीरन्ध्रहृदयोऽप्यहम्।
निजलोकभयादेव गलद्बाष्पं न रोदिमि।।

22।।

'जैसे पुराना वृक्ष अपने खोखले में रहनेवाली उग्र अग्नि से जल जाता है, वैसे ही हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरा इस दुःख से छुटकारा कैसे होगा ? ऐसी चिन्तारूप अग्नि से मैं सदा जलता रहता हूँ।। 21।। संसार के दुःखरूप पाषाण से मेरा अन्तःकरण जर्जर हो गया है। मैं अपने मित्रों और लोक से डरकर अश्रूपूर्ण नेत्रों से नहीं रो रहा हूँ, क्योंकि यदि मैं रोना आरम्भ करूँ तो वे भी रोने लगें।। 22।।

अपनी व्यथा का कुछ वर्णन करके अब श्री राम ने लक्ष्मी के सम्बन्ध में कहना आरम्भ किया :

मोहयन्ति मनोवृत्तिं खण्डयन्ति गुणावलिम्।
दुःखजालं प्रयच्छन्ति विप्रलम्भपराः श्रियः।।

25।।

'वंचना से भरपूर यह लक्ष्मी अन्तःकरण की वृत्तियों को मुग्ध करती है, गुणों को नष्ट करती है और अनेक तरह के दुःखों को देती है।'

चिन्ता दुहितरो बह्वयो भूरि दुर्ललितैर्विताः।
चंचलाः प्रभवन्त्यस्यास्तरङ्गाः सरितो यथा।।

3।।

सर्ग 13।।

'हे मुनिवर ! चिन्ताएँ श्री (लक्ष्मी) की पुत्रियाँ हैं। जैसे नदी से असंख्य तरंगें उत्पन्न होती हैं, फिर वे वायु की सहायता से बढ़ती हैं, वैसे ही श्री से असंख्य चिन्तारूप पुत्रियों की उत्पत्ति होती है, तदुपरान्त विविध दुश्चेष्टाओं द्वारा उनकी वृद्धि होती है।'

धन–सम्पत्ति की वृद्धि से दुःखी

प्राज्ञाः शूराः कृतज्ञाश्च पेशला मृदवश्च ये।
पांसुमुष्टयेव मणयः श्रिया ते मलिनीकृताः।।

9।।

न श्रीः सुखाय भगवन् दुःखायैव हि वर्धते।
गुप्ता विनाशनं धत्ते मूर्ति विषलता यथा।।

10।।

'जैसे धूल के कण मणियों को मलिन कर देते हैं, वैसे ही बड़े–बड़े विद्वान् शूरवीर, दूसरे के उपकार न भूलनेवाले, दक्ष और मृदुभाषी पुरुषों को भी धन–सम्पत्ति मलिन कर देती है।। 9।। भगवन् ! सम्पत्ति की वृद्धि से दुःख ही होता है, सुख नहीं होता। जैसे विष लता केवल मृत्यु का ही कारण होती है, वैसे ही श्री भी सुख का कारण न होकर दुःख ही का कारण होती हैं'।। 10।।

मनोरमा कर्षति चित्तवृत्ति
कदर्थसाध्या क्षणभंगुरा च।
व्यलावलीगात्र विवृत्तदेहा
श्वभ्रोत्थिता पुष्पलतेव लक्ष्मी।।

2।।

'यह लक्ष्मी मनोहर है, अतएव चित्तवृत्ति को अपनी ओर खींचती है। मरण, पतन आदि के कारण साहसिक कर्मों से प्राप्त होती है और बिजली के समान क्षणभर में नष्ट हो जाती है। अतः यह सर्पों से लिपटी हुई गढ़े में उत्पन्न हुई पुष्पलता के समान है।'

आयु भागती हुई चली जा रही है

लक्ष्मी की असारता कहकर श्री राम जी आयु के सम्बन्ध में कहते हैं :

आयुः पल्लवकोणाग्रलम्बाम्बुकणभंगुरम्।
उन्मत्तमिव संत्यज्य यात्यकाण्डे शरीरकम्।।

1।।

सर्ग 14।।

'जीव की आयु पत्ते के सिरे पर लटक रहे जल–बिन्दु (ओस) के सदृश अस्थिर है। वह उन्मत्त के समान असमय में ही कुत्सित शरीर को छोड़कर चली जाती है।'

युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।
ग्रथनं च तरङ्गाणामास्था नाऽऽयुषि युज्यते।।

5।।

'वायु का घेरा हो सकता है, आकाश के टुकड़े–टुकड़े किए जा सकते हैं और लहरें एक– दूसरे में माला की तरह गूंथी जा सकती हैं, पर आयु में विश्वास नहीं किया जा सकता।'

हाँ, अपने परम लक्ष्य की ओर चलनेवालों के लिए यह सुखप्रद है। इसके सम्बन्ध में श्री राम कहते हैं :

ते तु विज्ञातविज्ञेया विश्रान्ता विततते पदे।
भावाभावसमाश्वासमायुस्तेषां सुखायते।।

6।।

'जो लोग ज्ञातव्य वस्तु (आत्म–तत्त्व) को जान चुके हैं, आसीन ब्रह्म में विश्रान्त हैं और जिनके जीवन में लाभ–हानि तथा सुख–दुःख में चित्तवृत्ति समान रहती है, उन महापुरुषों की आयु ही लाभदायक है'।। 3।।

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्तु मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेन तु जीवति।।

11।।

'वृक्ष भी जीते हैं और मृग–पक्षी भी जीते हैं, पर उसी पुरुष का जीना जीना है जिसका मन मनन के फलस्वरूप तत्त्वज्ञान से या वासना के क्षय से स्वच्छ हो जाता है।'

भारोऽविवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः।
अशान्तस्य मनो भारो भारोऽनात्मविदो वपुः।।

13।।

'अपवित्र देह में आत्मबुद्धि करनेवाले अविवेकी के लिए शास्त्र भारभूत है (भार के समान व्यर्थ श्रम का ही कारण है)। विषयानुरागी पुरुष के लिए तत्त्वज्ञान भार है। अशान्त पुरुष के लिए मन भार है और अनात्मवान् के लिए शरीर भार है।'

क्रमशः

सत्यार्थ प्रकाश का महत्व

भारतेन्द्रनाथ (महात्मा वेदभिक्षुः)

सत्य और असत्य का विवेक, धर्म और अधर्म की व्याख्या, प्रभु से मिलने का मार्ग दर्शन यदि किसी ग्रन्थ में एक स्थान पर खोजना हो तो वह ग्रन्थ है– सत्यार्थप्रकाश।

सत्यार्थप्रकाश 'सत्य' का ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जिसे पढ़कर मन और मस्तिष्क पर छाया अज्ञान तिमिर स्वतः समाप्त हो, ज्ञान और सत्य प्रकट होकर, अन्तर को आलोक से भर देता है।

धर्म के नाम पर अधर्म, पुण्य के नाम पर पाप और सत्य के नाम पर असत्य तभी तक कहीं रह सकता है, जब तक कि वहाँ 'सत्यार्थप्रकाश' नहीं पहुँचा।

वस्तुतः आज भटके हुए मानव समुदाय को मृत्यु मार्ग से हटाने और जीवन–पथ पर चलाने की सामर्थ्य यदि किसी एक ग्रन्थ में है तो वह है 'सत्यार्थप्रकाश'।

'सत्यार्थप्रकाश' उस महान् व्यक्ति की रचना है जिसने जीवनभर कभी असत्य से समझौता नहीं किया, जिसके मन में कभी किसी के प्रति एक पल के लिए भी द्वेष नहीं उभरा, जो मनुष्यमात्र के उत्थान और कल्याण के लिए मृत्युपर्यन्त संघर्ष रत रहा। जिसके हृदय में सभी के प्रति माँ की ममता और स्नेह का सागर उमड़ता था।

ऋषि दयानन्द का खण्डन किसी मतविशेष के प्रति विरोध का सूचक न होकर अज्ञान, अधर्म और असत्य की समाप्ति के लिए था। वे चाहते थे कि –

(1) मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य जाने और एक परमात्मा को अपना उपास्य देव मान मोक्ष मार्ग का पथिक बने।

(2) वे मनुष्य और मनुष्य के मध्य खड़ी भेदभाव की दीवारों को मानवजाति के पतन और द्वेष का कारण मानते थे, इसलिए उनका लक्ष्य मनुष्यों के चलाए मतवादों को समाप्त कर धर्म के उस स्वरूप को स्थापित करना था जिसमें, व्यक्ति, देश, काल, जाति, वर्गविशेष के लिए कोई पक्षपात न हो।

(3) सत्य, प्रेम, न्याय और ज्ञान ऋषि के अस्त्र थे। इन्हीं के बल पर इन्हीं का प्रसार उनका इष्ट और मनुष्यमात्र की उन्नति उनका परम लक्ष्य था।

{स्रोत : स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत 'बाल सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका, प्रस्तुतकर्त्ता भावेश मेरजा}

गतांक से आगे...

वैदिक प्रार्थनाओं की ओजस्विता

● श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

{स्वर्गीय श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इस युग के लब्धप्रतिष्ठ वेदज्ञ थे जिन्होंने महर्षि दयानन्द की प्रेरणाओं को स्वीकार करके घोषित किया कि वेद की ऋचाएँ मानव वीरोचित कर्त्तव्यों के लिए हमें अनुप्रमाणित करती हैं। सातवलेकर जी का यह लेख, उनकी उन कतिपय रचनाओं में से एक है। इसी लेख के कारण पंडितजी गिरफ्तार किए गए थे और 'विश्ववृत्त' के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक को ढाई–ढाई साल की सज़ा हुई थी। –सम्पादक}

वैदिक काल के स्त्री–पुरुष राष्ट्र की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझते थे। राष्ट्र के स्वयंसेवक बनने के लिए ही अन्नादि का उपभोग करते थे। इस पर भी पाश्चात्यों का यह कहना कि उस समय राष्ट्रीय कल्पना नहीं थी, आर्यों के सनातन धर्म में "राष्ट्रीय स्वयं सेवकों" की कल्पना नहीं थी और उस समय के लोग भी राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों से अनभिज्ञ थे, आदि–आदि, एक आश्चर्य ही तो है। उस पर भी तुर्रा यह कि ये विद्वान् कहते हैं कि राष्ट्राभिमान की कल्पना भारतीयों को विदेशियों ने दी। वेद स्पष्ट कहता है–

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानाः
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।

(अथर्व. 12/1/62)

"हे पृथिवी! (हे मेरे देश) तुझसे उत्पन्न हुए हम सब लोग आरोग्य सम्पन्न, क्षयादि रोगरहित और पूर्णायुषी होकर तेरे ऊपर सर्वस्व को भी न्योछावर करने वाले हों।"

इस रीति से प्राचीन आर्य राष्ट्रसेवक बना करते थे, देश के लिए आत्मसमर्पण किया करते थे, अपने देह की बलि भी चढ़ा दिया करते थे। ऐसे राष्ट्रहित में तत्पर राष्ट्र सेवक यदि परमात्मा से–

स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्।

(अथर्व 10/3/12)

(वह परमेश्वर हमें उत्तम राज्य, क्षात्रतेज, उत्तम ज्ञान और उत्तम पशु आदि देवे) ऐसी प्रार्थना करें तो परमेश्वर भी क्या उस प्रार्थना को अस्वीकार कर सकता है? आलसी और आत्मघाती लोगों की प्रार्थनाओं का सम्मान परमेश्वर नहीं करता पर उत्साही, उद्योगी और तेजस्वी लोग जब अपना कर्त्तव्य पूरा करके परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं, तो परमेश्वर भी उनकी प्रार्थना को तत्काल सफल करता है। अब तक दिए गए मन्त्रों के आधार से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक धर्म में राष्ट्र सेवा की घुट्टी का वर्णन बड़े पैमाने पर है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस घुट्टी को पिटारी में बन्द न करके उसे उबाल–उबाल कर देश के बच्चों को पिलाया जाए। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि राष्ट्रभृत्यों की कौन–कौन सी इच्छाएँ होती हैं अथवा उनमें कौन–कौन सी इच्छाएँ होनी चाहिएँ–

असमं क्षत्रमसमा मनीषा।

(ऋ. 1/54/8)

"निस्सीम शूरवीरता और अतुल बुद्धि" इन दोनों की इच्छा राष्ट्र सेवक करते हैं।

सामान्य मनुष्य अपनी अथवा राष्ट्र की उन्नति के लिए बहुत से धन की इच्छा करते हैं पर जिस राष्ट्र के व्यक्तियों में निस्सीम शौर्य और अतुल बुद्धि होगी, उनके पास लक्ष्मी अपने आप दौड़ती हुई चली आएगी। इस तरह उत्साही राष्ट्रभृत्यों के लिए शत्रुओं पर आक्रमण करने के समय वेद किस तरह की प्रेरणा देता है, यह यहाँ द्रष्टव्य है–

उत्तिष्ठत संनह्यध्वं उदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत।।

(अथर्व. 11/10/1)

"उठो तैयार होओ, हे उदार लोगो एवं दूसरे रक्षकगणो ! अपने–अपने झंडों के साथ शत्रुओं पर चढ़ते चले जाओ।"

अपने राष्ट्र पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर और धनादि का अपहरण होते समय जो लोग अपनी ही खुशी में डूबकर अपने समय, बुद्धि और पैसे का अपव्यय करते हैं, वे नीच होते हैं पर जो समय पड़ने पर राष्ट्र के लिए अपना तन–मन–धन भी न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, वे उदार होते हैं। ऐसे उदार लोगों पर ही राष्ट्र के वैभव की स्थिति आश्रित रहती है। ऐसे उदार लोग अपने–अपने राष्ट्रीय झंडों को लेकर अपने–अपने देश के शत्रुओं पर आक्रमण करके उनकी धज्जी–धज्जी उड़ा दें, यही भाव इस मन्त्र का है। इस मन्त्र में आए हुए **'अमित्र'** शब्द पर ध्यान देना जरुरी है। जो हमारा हित करता है और हमारा मान करता है, वह मित्र है, इसके विपरीत जो हमारा अहित करता है और हमारा अपमान करता है, वह हमारा अमित्र है। ऐसे अहित करने वालों पर चढ़ाई करने के लिए और राष्ट्रोद्धार करने के लिए सभी उदार राष्ट्रभृत्यों को अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए भी सदा तैयार रहना चाहिए और साथ ही सदा जागृत रहना चाहिए।

अपने राष्ट्र पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर और धनादि का अपहरण होते समय जो लोग अपनी ही खुशी में डूबकर अपने समय, बुद्धि और पैसे का अपव्यय करते हैं, वे नीच होते हैं पर जो समय पड़ने पर राष्ट्र के लिए अपना तन–मन–धन भी न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, वे उदार होते हैं। ऐसे उदार लोगों पर ही राष्ट्र के वैभव की स्थिति आश्रित रहती है। ऐसे उदार लोग अपने–अपने राष्ट्रीय झंडों को लेकर अपने–अपने देश के शत्रुओं पर आक्रमण करके उनकी धज्जी–धज्जी उड़ा दें।

यह भाव "**उत्तिष्ठत**" (उठो) और "**संनह्यध्वं**" (संघटित हो जाओ) इन दो पदों के द्वारा दिखलाया है। अगला मंत्र लड़ाई में जाने के समय सैनिकों को प्रोत्साहन देने वाला है–

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वितिष्ठध्वम्।।(अथर्व.11/12/26)

अर्थ– हे मित्रो! तुम सब साक्षात् देवगण हो और उन सब देवों के भी तुम स्वामी हो। उठो और तैयार होओ और इस युद्ध में विजय प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार लोकों को प्राप्त करो।

इस मंत्र में ऐसा कहा है कि पहले मंत्र में वर्णित राष्ट्रभृत्य – राष्ट्रीय स्वयंसेवक हैं, वे मित्र सचमुच "देवजन" हैं। राष्ट्र पर आई हुई आपत्ति को नष्ट करने के लिए अपना बलिदान देने वाले निस्सन्देह देव होते हैं। इसी प्रकार युद्ध में अपना–अपना कर्त्तव्य करके मनुष्य इहलोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है। इस वैदिक उपदेश को लक्ष्य में रखकर ही भगवान ने अर्जुन से कहा था कि–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।।

(यदि तू युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग प्राप्त करेगा और यदि जीत गया तो इस पृथ्वी का भोग करना)। सब इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि राष्ट्र के लिए बलिदान देने से सब सुखों के द्वार खुल जाते हैं। धर्म इस सिद्धान्त को हमेशा प्रोत्साहन देता है। सच्चे धर्म से मनुष्य कभी भी निरुत्साही और निराश नहीं होता। युद्ध में जाने वाले सैनिकों की क्या अभिलाषा हो, उसका वर्णन निम्न मंत्र में है–

सहस्रकुणपा शेतामामित्री
सेना समरे वधानाम्।
विविद्धा ककजाकृता।

(अथर्व. 11/10/25)

अर्थ–(आज के) युद्ध में (हमारे द्वारा) मारे गए, शत्रुओं की हजारों लाशें, (हमारे शस्त्रास्त्रों के प्रहार से छिन्न–भिन्न होने के कारण कुरूप हुए शत्रु युद्ध क्षेत्र में पड़े रहें।

प्रत्येक वीर के हृदय में शत्रु को नष्ट करने की अभिलाषा होनी चाहिए। उसी तरह–

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीपतु।
शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः।

(अथर्व. 11/9/21)

अर्थ–(हमारे शस्त्रास्त्रों के प्रहार से) शत्रुओं के हृदय फट जाएँ और उनके प्राण निकल जाएँ। (घायल होने के कारण रक्तस्राव होने पर) उनके मुँह सूख जाएँ। यह दुर्दशा हमारे शुत्रओं की ही हो, हमारा हित चाहने वाले मित्रों की नहीं।

युद्ध में अथवा अन्यत्र भी हर तरह से शत्रुओं को जर्जरित करें। पर जो शत्रु न हों, उनके रास्ते का रोड़ा न बनें। निम्न मंत्र भी शत्रुनाश के कार्य पर जोर देता है–

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृधाः श्येनाः पतत्रिणः।।

(अथर्व. 11/10/24)

अर्थ– रथ में बैठे हुए, रथ से रहित, घोड़े पर बैठे और बिना घोड़े के, पैदल चलने वाले सभी शत्रु हमारे द्वारा मारे जाकर गिद्ध, बाज आदि पक्षियों का भोजन बनें।

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

मानव संसाधन मंत्रालय अभी गुलाम ही है

'आर्य गजट' लाहौर के 20.12.1934 के अंक में 'शिक्षा के विविध आयाम' शीर्षक से महात्मा हंसराज का एक व्याख्यान प्रकाशित हुआ है, उसका कुछ उपयोगी अंश हम महात्मा हंसराज के जन्म दिवस पर यहाँ उद्धृत कर रहे हैं–

"1835 ई. में शिक्षा का कार्यक्रम विधिवत् आरम्भ हुआ। जिस समय शिक्षा आरम्भ हुई थी उस समय अंग्रेज़ों में भी दो दल थे। एक दल चाहता था कि भारत में अंग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य की शिक्षा दी जाए, दूसरा पक्ष कहता था कि यह शिक्षा नहीं प्रत्युत प्राचीन प्रणाली से शिक्षा दी जाए। पहले बात यह थी कि उसे (ब्रिटिश शासकों को) अपने कार्यालयों के लिए कुछ क्लर्कों की आवश्यकता थी जो उनकी इच्छा के अनुसार राजकीय कार्य करते क्योंकि यह असम्भव था कि योरोप तथा इंग्लैंड से इतने लोग राजकीय कार्य के लिए आवें। दूसरे बात यह थी कि शासन चाहता था एक ऐसी पार्टी हो जिसके विचार उनके अनुकूल हों तथा जो उनकी बातों को भली प्रकार से समझ सके। सरकार ने समझा कि वह समूह योरोपियन जीवन पद्धति अपनाएगा, योरोप का साहित्य पढ़ेगा तथा योरोप की वेशभूषा को अपनाएगा। इसलिए ऐसे व्यक्तियों का निर्माण होना चाहिए। तीसरा दल इस विचार का था कि उनके ज्ञान साहित्य का प्रचार हुआ तो उनका व्यापार बढ़ेगा।"

"इन तीनों विचारों ने विलियम बैंटिक के काल में भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा को प्रचलित कराया। यह नाम लेना चाहिए कि इससे पहले पादरियों ने पग आगे धरा था। वे लोग जानते थे तथा विश्वास रखते थे कि यदि उन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा प्रचलित की तो उनके मत की उन्नति होगी, अतः कलकत्ता, मद्रास तथा कुछ अन्य स्थानों पर पादरियों ने अपने स्कूल स्थापित किए। इससे पूर्व कि शासन ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया, पादरियों को इसमें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। बड़े–बड़े ऊँचे परिवारों के लड़के पादरी डफ तथा अन्य पादरियों के प्रभाव में आकर ईसाई हो गए जिनकी सन्तान आज भी ईसाई है। परन्तु 1857 ई. में भारत में एक दुर्घटना हुई, मेरा अभिप्राय विप्लव से है। उस समय भारत सरकार ने समझा कि वह एक ज्वालामुखी पर्वत पर खड़ी है। न जाने यह ज्वालामुखी पर्वत कब फट पड़े तथा हम विनष्ट हो जावें, अतः हमें अपने दृष्टिकोण से शिक्षा देने की आवश्यकता है। इसके पश्चात् ही इस देश के अन्दर अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रसार हुआ। परन्तु एक और घटना लार्ड रिपन के काल में 1882 ई. में घटी। उन्होंने कहा–शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिसमें लोगों का अपना हस्तक्षेप हो (अर्थात् लोगों का शिक्षा संस्थाओं से तालमेल हो) अतः उन्होंने स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अधीन शिक्षा का कार्य कर दिया और यह भी निर्णय कर दिया कि प्राईवेट संस्थाओं को भी जो वे कार्य करें, राजकीय सहायता दी जाएगी तथा शासन उनकी पीठ पर होगा।....."

लार्ड रिपन के अनुसार शिक्षा में लोगों का अपना हस्तक्षेप होने के उपरान्त भारत में जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित रही उसने काले अंग्रेज़ों को जन्म दिया। उन काले अंग्रेज़ों के वंशज आज भी उस परम्परा को स्थिर किए हुए हैं। अभी मार्च 97 में सम्पन्न 10वीं और 12वीं कक्षा के इतिहास और समाजशास्त्र के प्रश्न पत्रों पर 'नवभारत टाइम्स' हिन्दी दैनिक के एक लेखक श्री तपेश्वरनाथ जुत्सी ने जो वेदना व्यक्त की है हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं–

यह प्रश्न पत्र 'सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्ड्री एजुकेशन' द्वारा बनाए गए थे। सी. बी. एस. ई. न केवल सारे भारत में अपितु विदेशों में भी परीक्षा लेती है, और यह माना जाता है कि उसकी परीक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है। लेकिन दुःख की बात है कि सी. बी. एस. ई. द्वारा दिए गए इतिहास के प्रश्न पत्रों से साफ पता चल जाता है कि इस सरकारी संस्था को चलाने वाले बड़े अधिकारी जानबूझ कर विद्यार्थियों में देश भक्ति की भावना को कुचलना चाहते हैं और उनको ब्रिटिश साम्राज्य के गुण गाने के लिए मजबूर करते हैं।

बारहवीं कक्षा के इतिहास के प्रश्न–पत्र के दो भाग हैं: पहला आधुनिक भारत और दूसरा समकालीन विश्व। पहले भाग का पहला प्रश्न है ***'1858 से पूर्व ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाए गए कोई दो लोकोपकारी उपायों का उल्लेख कीजिए।'***

जहाँ पहला प्रश्न विद्यार्थियों को मजबूर करता है कि वह ब्रिटिश शासन की अच्छाइयाँ याद रखें, वहीं सातवाँ प्रश्न उनको मजबूर करता है कि वह भारत के धार्मिक सुधार आंदोलनों के नकारात्मक पक्ष याद रखें। सातवाँ प्रश्न है : ***'आपके विचार में परवर्ती 19वीं शताब्दी के धार्मिक सुधार आंदोलनों के नकारात्मक पक्ष कौन से थे? अपने उत्तर की पुष्टि कारण बताते हुए कीजिए।'***

1835 ई. में शिक्षा का कार्यक्रम विधिवत् आरम्भ हुआ। जिस समय शिक्षा आरम्भ हुई थी उस समय अंग्रेज़ों में भी दो दल थे। एक दल चाहता था कि भारत में अंग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य की शिक्षा दी जाए, दूसरा पक्ष कहता था कि यह शिक्षा नहीं प्रत्युत प्राचीन प्रणाली से शिक्षा दी जाए। पहले बात यह थी कि उसे (ब्रिटिश शासकों को) अपने कार्यालयों के लिए कुछ क्लर्कों की आवश्यकता थी जो उनकी इच्छा के अनुसार राजकीय कार्य करते क्योंकि यह असम्भव था कि योरोप तथा इंग्लैंड से इतने लोग राजकीय कार्य के लिए आवें।

सी. बी. एस. ई. की दसवीं कक्षा की परीक्षा में सोशल साईंस के प्रश्न पत्र में चार भाग होते हैं। भाग क – इतिहास, भाग ख– नागरिक शास्त्र, भागग–भूगोल और भाग घ– –अर्थशास्त्र। इतिहास के लिए 35 अंक, नागरिक शास्त्र के लिए 20 अंक, भूगोल के 35 अंक और अर्थशास्त्र के लिए 10 अंक हैं। इतिहास में पहला प्रश्न है : ***'न्यू डील (1933) से क्या अभिप्राय है ?'*** दूसरा प्रश्न है : ***'एशिया के साम्राज्यवाद के दो सकारात्मक प्रभावों का उल्लेख कीजिए।'***

देश–विदेश में लाखों बच्चे एक ही दिन सी. बी. एस. ई. द्वारा आयोजित परीक्षा दे रहे हैं। यह गौर करने की बात है कि दसवीं कक्षा के इन बच्चों से इतिहास के बारे में जो पहला प्रश्न पूछा गया, वह अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट के काल में चलाई गई नीति ***'न्यू डील'*** के बारे में था। ऐसा क्यों? क्या हमारे देश में अमरीका का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि हमारी शिक्षण संस्थाएँ उनके इशारों पर चल रही हैं?

न तो दसवीं कक्षा के शोशल साईंस के प्रश्न पत्र में और न बारहवीं कक्षा के इतिहास के प्रश्न पत्र में कहीं यह पूछा गया कि ब्रिटिश शासन द्वारा भारत की अर्थव्यवस्था को कैसे बर्बाद किया गया, जिससे हमारा देश जो पहले बहुत समृद्ध था, गरीब हो गया और जनता भुखमरी का शिकार हो गई। पं. सुन्दरलाल ने ***'भारत में अंग्रेज़ी राज'*** में ब्रिटिश शासन के काले कारनामों का विस्तार से वर्णन किया है। उनकी पुस्तक पर अंग्रेज़ों ने प्रतिबंध लगा दिया था। पं. सुन्दरलाल की पुस्तक ***'भारत में अंग्रेज़ी राज'*** अपने घर रखना जुर्म था और उनकी 'पुस्तक स्वतंत्रता सेनानी, चोरी छुपे पढ़ा करते थे।

सी. बी. एस. ई. द्वारा आयोजित परीक्षा में न तो दसवीं कक्षा और न बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों से पूछा गया कि अंग्रेज़ों ने क्या जुल्म ढाए। 1857 के पहले बड़े स्वतंत्रता संघर्ष को कुचलने के बाद से 1942 की क्रान्ति तक अंग्रेज़ों ने भारत की जनता पर क्या जुल्म किए, इस पर कोई प्रश्न नहीं है। जलियाँवाला बाग में एक हज़ार से ज्यादा आदमी, औरतें और बच्चे वैसाखी के दिन मशीनगन की गोलियों से भून दिए जाने की याद दिलाना उचित नहीं समझा गया। दूसरे महायुद्ध के दौरान जब नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आज़ाद हिन्द फौज का नेतृत्व करते हुए बंगाल की ओर बढ़ रहे थे तो अंग्रेजों ने बंगालियों का मनोबल तोड़ने के लिए जानबूझकर अकाल की परिस्थिति पैदा कर दी जिसमें 30 लाख बंगाली भुखमरी से मर गए। इस ऐतिहासिक घटना पर कोई प्रश्न नहीं है, लेकिन प्रश्न है 1909 के मार्ले–मिन्टो सुधारों के मुख्य उपबंध क्या थे?

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों की याद दिलाने के लिए कोई प्रश्न पत्र नहीं था। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर भगत सिंह और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के बलिदानों ने भारत की जनता का सर कैसे ऊँचा रखा और उसका मनोबल गिरने नहीं दिया, इस पर कोई प्रश्न नहीं है। लेकिन प्रश्न है : ***'ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रशासनिक और आर्थिक***

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

महात्मा हंसराज जी के जीवन के कुछ अंतरंग संस्मरण

● महात्मा आनन्द स्वामी

लाला हरकिशनलाल जी लिखते हैं:

मेरे पितामह रेलवे में क्लर्क थे। लाला मुलकराज जी भी अच्छे काम पर थे। महात्मा जी जाति सेवा के कार्य में तत्पर थे। महात्मा जी इस बात को जानते थे कि कुछ वृत्तियाँ सांसारिक कार्यक्षेत्र में ऐसी भी हैं, जिन्हें कि कुलीन हिन्दू घृणा की दृष्टि से देखते हैं और वे वृत्तियाँ हैं लाभदायक, पर उन पर यवनों का एकाधिकार है। आपकी दृष्टि में एक ऐसा व्यवसाय जूते अथवा बूटों का था। इस व्यवसाय के द्वार को हिन्दू जाति के लिए खोलने के विचार से आप ने हमारे पिता लाला धनीराम भल्ला को इस व्यवसाय में लगाया तथा इस व्यापार को सफल करने के लिए तथा हिन्दुओं के हृदयों से इस व्यापारिक घृणा को नष्ट करने के दुकान के लिए लिए आप स्वयं पूर्ण योग देते थे। आप स्वयं अपना अमूल्य समय देते थे, देखभाल करते थे और प्रत्येक प्रकार की सहायता करते थे। आप ही के परिश्रम से दुकान फली फूली और इस दुकान को सफल हुआ देखकर और भी सैकड़ों हिन्दुओं ने इस व्यवसाय को अपनाया।

***

आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर हमें स्कूल में नगरकीर्तन में सम्मिलित होने से पूर्व ही कह दिया जाता था कि नगरकीर्तन में आदि से अन्त तक सम्मिलित रहना और भली प्रकार भजन बोलते रहना क्योंकि नगर में कहीं न कहीं महात्मा हंसराज जी आप का निरीक्षण करेंगे। इस बात को सुनकर हम लोग बड़े चाव तथा जोश से भजन गाते जाते और अन्त तक उसमें सम्मिलित रहते। मन में सदा यही ध्यान रहता कि न जाने कहाँ पर महात्मा जी खड़े हों। महात्मा जी नगरकीर्तन आदि की पड़ताल स्वयं करते थे। आप किसी न किसी थड़े पर खड़े हुए नगरकीर्तन में कभी सम्मिलित न हों, यह नहीं हो सकता था।

***

महात्मा जी को पैसे की बहुत कद्र थी। पैसे को अनुचित रीति से कभी व्यय न करते थे। आपके जीवन में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह थी कि आपको अत्यधिक सफर करना पड़ता था। पर, आपने अपने सारे जीवन में इण्टर क्लास से ऊपर के दर्जे में कभी सफर नहीं किया

***

जिन दिनों महात्मा जी इंग्लैंड गए थे, उन दिनों मेरे बाबा ही हमारे परिवार के सबसे वृद्ध व्यक्ति थे। इंग्लैंड जाने के दिन लाहौर रेलवे स्टेशन पर एक अद्‌भुत दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। हजारों की संख्या में मनुष्य स्टेशन पर आपको विदा करने के लिए तथा आपके दर्शन करने के लिए एकत्रित थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई मेला लगा हो। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति आपके चरण छूकर नमस्ते करने में संलग्न था क्योंकि इससे वह अपने आपको गौरवान्वित समझता था। उस समय लोगों ने देखा कि महात्मा जी कुछ पग वेग से एक ओर बढ़े और आपने स्वयं एक व्यक्ति के चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। ये व्यक्ति आपके चाचा लाला छजूराम जी थे। यह थी महात्मा जी की हलीमी!

***

1928 ई. के कुम्भ के दिनों में एक दिन महात्मा जी और मैं सैर से लौट रहे थे। बातें करते हुए आपने कहा, "पण्डित जी ! आप भोजन मोहन आश्रम में नहीं करते। भोजन का प्रबंध आपने अन्यत्र कर रखा है। मुझे विदित नहीं कि आप क्या–क्या पदार्थ भोजन के साथ खाते हैं। मैं आपको यह सलाह देता हूँ कि आप भोजन के साथ प्याज और आमले का अचार अवश्य खाया करें क्योंकि कुम्भ के बाद हैजा फैल जाता है अतः आप इस बहम को छोड़ दें कि हरिद्वार में प्याज खाना ठीक है या नहीं।"

***

इसी अवसर पर एक और दिन प्रातःकालीन भ्रमण से लौटते हुए आपने इस बात को खेद से अनुभव किया कि डी. ए.वी. स्कूल का कोई भी अध्यापक कुम्भ मेले में सम्मिलित नहीं हुआ है। आपने कहा, "बेहतर होता कि कोई न कोई स्कूल का अध्यापक यहाँ अवश्य होता, जिसमें उसको सेवा करने का अवसर मिल जाता और उसे यहाँ के लोगों की अवस्था का भी पूरा–पूरा ज्ञान हो जाता।"

***

पंडित मस्तान चन्द जी लिखते हैं :

मैं प्रातः काल उठकर 'लोअर माल' पर उनके दर्शनों को भागकर जाया करता था। 'नमस्ते' कहकर जब पास पहुँचता तो, हंसराज कह उठते, "आज ब्राह्मणी ने छुट्टी दे दी।" "हाँ महाराज! आज छुट्टी मिल गई है, तभी तो आ गया हूँ। आप की तरह बेफिक्र वानप्रस्थी थोड़े ही हूँ कि सड़कों पर बिना किसी कार्य के ही फिरता हूँ।" यह उत्तर पाकर आप बहुत जोर से हँसते थे और कभी–कभी पीठ पर एक आध थपकी भी लगा देते थे।'

***

मेरा एक बच्चा चार वर्ष की आयु में परलोक सिधारा। बच्चा छोटा था इस वास्ते किसी को कष्ट देना उचित न समझकर एक–दो पड़ोसियों की सहायता से बच्चे को जल में प्रवाहित कर आया। न जाने महात्मा जी को किसने यह समाचार पहुँचा दिया। चौथे दिन दौड़कर एक चपरासी ने समाचार दिया कि महात्मा जी आपसे मिलने आए हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं बाहर निकला, हाथ जोड़ 'नमस्ते' कही। नौकर ने दो कुर्सियाँ बाहर निकालीं। हम दोनों बैठ गए। महात्मा जी ने बैठते ही कहा, "बच्चे को क्या हुआ था? मुझे तो सायंकाल ही पता लगा। बड़ा दुःख हुआ।" मेरी आँखों से दो आँसू निकले। मैंने बच्चे की बीमारी की कहानी सुनाई ध्यान से सुनते रहे और मुझे धैर्य देते रहे। मैंने पूछा, "आपने क्यों कष्ट किया?" इसका कोई उत्तर नहीं दिया और थोड़ी देर बैठकर वापिस चले गए।

***

1927–28 में गढ़वाल में विकट अकाल पड़ा। महात्मा जी ने सहायता की अपील की। दान धड़ाधड़ आने लगा। स्वयं सेवक काम करने के लिए भेजे गए। बहुत से स्थानों पर अनाज के भण्डार खोल कर लोगों की सेवा की गईं। महात्मा जी स्वयं इस कठिन पहाड़ी देश में गए और घूम–घूम कर लोगों की पीड़ित अवस्था को देखा। एक बार सड़क पर जाते हुए एक बड़ा पत्थर लुढ़कता हुआ उनके घुटने पर लगा। चोट आई चलना असंभव हो गया। मास्टर गिरधारी लालजी उनको पालकी में डालकर श्रीनगर ले आए। जिला गढ़वाल के माननीय पुरुषों ने महात्मा जी को बहुत बड़ी पार्टी दी और उनसे प्रार्थना की कि गढ़वाल में विद्या का प्रचार नहीं है। जैसे महात्मा जी ने गढ़वालियों की भूख को दूर किया है, इसी तरह उनकी अविद्या को भी दूर करें। महात्मा जी ने उत्तर देते हुए कहा कि गढ़वाल फंड का यदि कुछ रुपया बच गया तो उससे गढ़वालियों की अविद्या को दूर करने में सहायता देंगे। बाद में लाहौर पहुँचते ही बहुत सी छात्र–वृत्तियाँ प्रारम्भ कर दीं, जिससे उस प्रदेश के बहुत से योग्य विद्यार्थियों को लाभ हुआ और फिर पौड़ी में दयानन्द हाई स्कूल जारी कराया।

***

मलकाना शुद्धि के दिनों की बात है। स्वामी श्रद्धानन्द जी दिल्ली में रहते थे तथा कभी–कभी आगरा आया करते थे। महात्मा जी उनके लिए बड़ा पलंग विछवा कर उनका बिस्तर करवाते थे। उनको पलंग पर बिठाकर आप दरी पर बैठते थे। मैंने एक दिन हँसी में कहा, "महात्मा जी! आप कॉलेज पार्टी का बड़ा अपमान कर रहे हैं।" महात्मा जी के कारण पूछने पर मैंने कहा, "आपने कॉलेज पार्टी को बहुत नीचा दिखलाया है। आप स्वयं भूमि पर बैठते हैं और उन्हें पलंग पर बिठाते हैं।" महात्मा जी ने कहा, "स्वामी जी संन्यासी हैं। शुद्धि सभा के प्रधान हैं। बाहर से आने के कारण हमारे अतिथि हैं अतः, हर प्रकार हमारी पूजा के पात्र हैं।"

***

उत्तर प्रदेश में काफी गर्मी होती है। महात्मा जी अनेक बार ग्रामों में गए। वहाँ की गर्मी ने उनकी आँखों पर प्रभाव डाला। एक लोटा, गुड़ तथा जौ का सत्तू साथ लेकर चलते थे। जहाँ भूख लगती थी, मैं उनको घोलकर दे देता था, खुद भी खाता था। महात्मा जी का मेरे साथ हमेशा झगड़ा हुआ करता था। वे कहा करते कि सत्तू शीघ्र पच जाने वाले और ठंडक पहुँचाने वाले होते हैं और मैं कहता कि 'सत्तू वृद्ध पुरुषों का भोजन है। वृद्ध पुरुषों की पाचन शक्ति कमजोर होती है। वे बोझल खाने को पचा नहीं सकते। सत्तू शीघ्र ही इसलिए पच जाते हैं क्योंकि यह बल देने वाली वस्तु नहीं।

***

एक बार एक ग्रामीण के टांगे पर चढ़े हुए शुद्धि के लिए हम एक ग्राम की ओर जा रहे थे। टांगा हाँकने वाला एक वृद्ध मुसलमान था। बहुत बातें करने वाला। घण्टा भर उसकी वाणी चलती रही और महात्मा जी उसकी बातें प्रेम से सुनते रहे। सहसा बूढ़े ने महात्मा जी की ओर मुँह फेरा और बोला "बाबा जी! पंजाब में अफीम का क्या भाव है?" महात्मा जी हँस पड़े। मैंने भी हँसकर कहा, "आप उत्तर क्यों नहीं

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आर्यसमाज स्थापना दिवस

● भद्रसेन

आर्यो आओ! आर्यसमाज के स्थापना दिवस को समझें और अपनाएँ।

आर्य समाज का अर्थ है–आर्यों का संगठन, समूह, इकट्ठे; समाज शब्द का शास्त्रीय अर्थ है= समझदारों का समूह। आर्य शब्द जब *ऋ(गतौ)* धातु से बनता है, तब किसी की क्रियाशीलता को सामने लाता है। क्रियाशील–'पुरुषार्थ ही इस दुनिया में सब कामना पूरी करता है' इस उद्देश्य को लेकर जीवन जीता है अतः वह आत्मविश्वासी और आत्मसम्मान से भरा हुआ होता है।

हाँ ! सभी कोशों में आर्य का अर्थ–श्रेष्ठ, अच्छा, भला, सभ्य, संस्कृत आदि दर्शाया गया है। एक क्रियाशील के लिए मर्यादित, व्यवस्थित, नियमित, नियमबद्ध होना आवश्यक हो जाता है इसीलिए आज आर्यसमाज के सर्वप्रसिद्ध दस नियम हैं।

आर्यसमाज की स्थापना 1875 में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने बम्बई (मुम्बई) में की थी।

पृष्ठभूमि– आर्यसमाज के संस्थापक के जीवन से परिचित होना आवश्यक हो जाता है, तभी स्थापना की पृष्ठभूमि सामने आ सकती है। संसार के इतिहास की अपने आप में यह एक अनोखी घटना है कि मूलशंकर नाम का एक किशोर शिवरात्रि पर व्रत रखता है। वहाँ हुए घटना चक्र से विह्वल होकर सच्चे शिव के दर्शन की प्रतिज्ञा करता है। उस के अध्ययन करते–करते ही दो वर्ष के अन्तराल से जब बहिन और चाचा जी की मृत्यु का घटनाचक्र सामने आता है तो मूल शिवदर्शन के संकल्प के साथ मौत के भेद को समझने का भी विचार युवक को विशेष खोजी बना देता है। जिस का सभी यही उत्तर देते हैं कि योग से ही यह साध सिद्ध हो सकती है।

इक्कीस वर्षीय पठित युवक योग सिखाने वाले गुरु को प्राप्त करने के लिए घर से निकल जाता है। रास्ते की बाधाओं को पार करते हुए मन से ब्रह्मचारी बना शुद्धचैतन्य लगातार चौदह वर्ष मैदानों, पहाड़ों, जंगलों की खाक छानता है। जहाँ कहीं योग सिखाने वाला और शास्त्र पढ़ाने वाला मिलता है, विनीत शिष्य बनकर वहाँ पहुँचता है।

एक दिन मथुरा में ब्रह्मर्षि गुरु विरजानन्द दण्डी जी के शिष्य बन जाते हैं। वहाँ विशेषतः व्याकरण के शिखर ग्रन्थों को पढ़ते हैं। ढ़ाई तीन वर्ष पश्चात् जब गुरु जी से साधना पथ पर आगे बढ़ने के लिए विदा माँगते हैं। इस पर गुरु ने दयानन्द के जीवन का काँटा ही बदल कर आर्षज्ञान की ज्योति यत्र–तत्र जग–मगाने का व्रत धारण करा दिया।

स्वामी दयानन्द तब पूरी तन्मयता से इस कार्य में जुट जाते हैं। इस कार्य को आगे बढ़ाते हुए वह वैरागी जहाँ अंगोछे के स्थान पर पूर्ण वस्त्र धारण करता है, वहाँ वह समाजसुधारक हिन्दी भाषा को संस्कृतभाषा की अपेक्षा प्रमुखता देता हे।

सबसे विशेष बात यह होती है, कि आर्ष ज्ञान की ज्योति को सदा जग–मगाए रखने के लिए आर्यसमाज संगठन की स्थापना की। नवजागरण के पुरोधा की प्रेरणा पर आर्य समाजों के सदस्य वैयक्तिक कर्त्तव्य में ही सीमित न होकर पारस्परिक सहयोग से सामाजिक कार्यों में बढ़–चढ़कर भाग लेते है तभी तो आर्यसमाज के नवम् नियम में कहा है–*'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।'*

इक्कीस वर्षीय पठित युवक योग सिखाने वाले गुरू को प्राप्त करने के लिए घर से निकल जाता है। रास्ते की बाधाओं को पार करते हुए मन से ब्रह्मचारी बना शुद्धचैतन्य लगातार चौदह वर्ष मैदानों, पहाड़ों, जंगलों की खाक छानता है। जहाँ कहीं योग सिखाने वाला और शास्त्र पढ़ाने वाला मिलता है, विनीत शिष्य बनकर वहाँ पहुँचता है।

वस्तुतः आर्यसमाज का उद्भव आर्यता के प्रचार–प्रसार के लिए हुआ है, अतः आर्यता की माँग है कि प्रत्येक अपने हित, अच्छाई को समझें और फिर स्वयं भलाई की राह पर चलें। जैसे कि सभी स्वच्छता में अपनी हर तरह से भलाई समझते हैं अतः सभी को सदा स्वयं ही स्वच्छता के प्रति जागरूक रहना चाहिए।

आइए। अब आर्यसमाज के नियमों पर कुछ संक्षिप्त सा विचार कर लिया जाए।

आर्यसमाज के नियम–

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्यसमाज के प्रथम नियम में ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने वाली दो युक्तियाँ दी गई हैं। अतः आर्यसमाज ईश्वर को स्वीकार करने वाला संगठन है। द्वितीय नियम के अन्तिम भाग में परमेश्वर को सृष्टिकर्ता कहा है। किसी सृष्टिकर्ता में सर्वव्यापक, नित्य आदि जो–जो खूबियाँ होनी चाहियें उन गुणों को इस नियम में कहा गया है। यहाँ अन्त में यह सुझाया गया है, कि ऐसे गुणों से भरपूर परमात्मा ही एकमात्र उपासना के योग्य है। क्योंकि वह ही केवल और केवल नित्य, सर्वव्यापक, सब का संचालक तथा सृष्टिकर्ता जैसे सैंकड़ों गुणों से पूर्ण है।

आर्यसमाज के तृतीय नियम में दर्शाया गया है कि मानव की प्रत्येक प्रगति का एकमात्र मूल (वेद=) ज्ञान ही है अतः उसके अर्जन में सदा उद्यत रहना चाहिए। इसकी प्राप्ति के चार प्रकार हैं। सभी समझदार **सत्य** को सदा चाहते हैं अतः चौथे नियम में **सत्य** के ग्रहण के लिए तैयार रहना चाहिए। यही उत्तम भावना है। इसके साथ पाँचवें नियम में सावधान किया गया है, कि विचारपूर्वक ही सत्य को स्वीकार करना उचित रहता है।

संसार में अपना पेट तो कौआ भी भर लेता है पर विचारशील मनुष्य का कर्त्तव्य हो जाता है, कि वह यथाशक्ति दूसरों के उपकार को करते हुए जिए। हाँ उपकार के विभिन्न प्रकारों का निर्देश करते हुए कहा है– शरीर, आत्मा और समाज की उन्नति के रूप में उपकार करना चाहिए। इन उपकार के ढंगों में अन्तिम सामाजिक उन्नति है अतः अगले नियमों में इसकी रूप रेखा बताई है। सातवें नियम में सामाजिक व्यवहार का सन्देश दिया है कि समाज में व्यक्ति का किसी से रिश्ते का, कुछ से पड़ोसी और कुछ से मित्र के रूप में सम्बन्ध जुड़ा होता है अतः सम्बन्ध के अनुरूप आपस का व्यवहार वर्तना चाहिए। आठवें नियम में सुझाव दिया गया है, कि अन्धेरे की तरह अविद्या= उलटा ज्ञान, व्यवहार समाज का सबसे बड़ा बाधक तत्त्व हैः इसको दूर करने का सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। नवम् नियम में सामाजिक भावना को सामने रखने की बात है, तो वहाँ दशम् में कहा है, कि सर्वहितकारी, सामाजिक बातों को हमें अपने आचरण में प्रमुखता देनी चाहिए।

सारांश–आर्यसमाज शब्द की मूलभावना है, कि अपनी भलाई को समझें फिर उसकी राह को पहचानें तदनन्तर उसको अपना कर अपना वैयक्तिक तथा सामाजिक हित साधने में सदा जुटे रहें। इसीलिए ही कहा गया–**'नान्यः पन्था विद्यते–अयनाय।।'**

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

आर्यसमाज की स्थापना के प्रेरक, संस्थापक एवं प्रमुख प्रचारक विद्वान् आदि कुछ महान् हस्तियाँ

● मनमोहन कुमार आर्य

आर्यसमाज की स्थापना ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में की थी। आर्यसमाज की स्थापना के प्रेरक मुम्बई के ऋषि दयानन्द के कुछ शिष्य बने थे, परन्तु आर्यसमाज की मुख्य प्रेरणा तो हमें लगता है कि ऋषि दयानन्द के विद्यागुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी ने स्वामी दयानन्द जी की गुरु दक्षिणा के अवसर पर की थी। आज हमने ऋषि दयानन्द जी के कुछ प्रमुख शिष्यों और आर्यसमाज के प्रमुख स्तम्भ रहे महापुरुषों को स्मरण करने का प्रयत्न किया तो कुछ नाम हमारे स्मृति पटल पर उभरे जिन्हें हम अपने मित्रों से साझा कर रहे हैं :

1. दण्डी स्वामी विरजानन्द जी, मथुरा, ऋषि दयानन्द के विद्यागुरु
2. ऋषि दयानन्द सरस्वती जी, आर्यसमाज के संस्थापक
3. स्वामी श्रद्धानन्द जी
4. रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी
5. मनीषी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी
6. महात्मा हंसराज जी, डी.ए.वी. आन्दोलन को सफल बनाने वाले प्रमुख सूत्रधार।
7. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी
8. लाला लाजपत राय जी
9. महाशय राजपाल जी, प्रकाशक, लाहौर
10. कविर्मनीषी पं. चमूपति जी
11. महात्मा आनन्द स्वामी जी
12. महात्मा नारायण स्वामी जी
13. स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी
14. लौहपुरुष पं. नरेन्द्र जी, हैदराबाद
15. शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी जी
16. भाई परमानन्द जी
17. शास्त्रार्थ महारथी स्वामी अमर स्वामी जी
18. कुँवर सुखलाल जी, आर्य भजनोपदेशक
19. महाशय अमीचन्द जी, आर्यसमाज के प्रथम गीतकार वा भजनोपदेशक
20. पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी
21. महामहोपाध्याय पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी
22. पं. भगवद्दत्त जी
23. पं. जगदेवसिंह सिद्धान्ती जी
24. सामवेद भाष्यकार पं. आचार्य डॉ. रामनाथ वेदालंकार जी
25. स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती जी, विद्वान् प्रचारक एवं सांसद
26. पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, संन्यास के बाद स्वामी समर्पणानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए
27. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी
28. डॉ. सत्यप्रकाश सरस्वती जी, वेदों के आंग्ल भाषा में अनुवादक
29. स्वामी सत्यपति जी, रोजड़
30. स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी, गुरुकुल झज्जर–हरियाणा
31. डॉ. भवानीलाल भारतीय जी, आर्यसमाज के विद्वान् एवं ऋषि के जीवनचरित सहित अनेक ग्रन्थों के लेखक।
32. प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी, अबोहर प्रसिद्ध विद्वान एवं तीन सौ से अधिक ग्रन्थों के लेखक।
33. पं. राजवीर शास्त्री जी, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली– वैदिक कोश एवं विशुद्ध मनुस्मृति के प्रणेता।
34. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, दिल्ली, भूमिका भास्कर, सत्यार्थ भास्कर, संस्कार भास्कर, तत्वमसि आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों के प्रणेता वा लेखक।
35. डॉ. धर्मवीर जी, परोपकारिणी सभा के प्रधान पद पर रहे।
36. स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी लगभग 8 गुरुकुलों के संस्थापक एवं संचालक। हमारा सौभाग्य है कि आज भी स्वामी जी हमारे मध्य विद्यमान हैं। ईश्वर इन्हें स्वस्थ रखें एवं दीघार्यु प्रदान करें।
37. स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती जी– आपने देश भर की आर्यसमाजों में जा–जाकर प्रचार किया और वृहद यज्ञों का संचालन यज्ञ के ब्रह्मा के रूप में किया।
38. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी मनुस्मृति के प्रक्षेपों को दूर कर मनुस्मृति का सर्वग्राह्य भाष्य वा अनुवाद का ऐतिहासिक कार्य किया।
39. पं. गोविन्द राम जी– वैदिक साहित्य के प्रकाशन संस्थान गोविन्दराम हासानन्द के संस्थापक स्व. श्री गोविन्द राम जी के पुत्र श्री विजय कुमार एवं पौत्र श्री अजय आर्य जी वैदिक साहित्य के प्रकाशन कार्य को अत्यन्त प्रशंसनीय रूप में आगे बढ़ा रहे हैं।
40. श्री प्रभाकरदेव आर्य जी हिण्डोनसिटी, आपने हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डोनसिटी आदि नामों से शातादिक महत्वपूर्ण वैदिक साहित्य का, जिसमें चार वेदों की मंत्र संहिताएँ एवं चारों वेदों का हिन्दी भाष्य का भी सम्मिलित है, प्रकाशन किया है।

यह सूची और बढ़ाई जा सकती है परन्तु हम इसे यहीं विराम दे रहे हैं। ओ३म् शम्।

196 चुक्खूवाला–2, देहरादून – 248001
मो. 09412985121

☞ पृष्ठ 04 का शेष

वैदिक प्रार्थनाओं की...

वैदिक उपदेश सदा उत्साह और वीरता उत्पन्न करने वाले हैं, उनमें ओजस्विता और तेजस्विता भरपूर भरी हुई है। मनुष्यों के द्वारा जो–जो काम अनिवार्यतया करणीय हैं, उन कर्त्तव्य कर्मों का बोध वेदमन्त्र द्वारा उनके स्वाध्याय करने वाले को हो सकता है। रही बात आततायियों की, वैदिक धर्म कभी यह नहीं कहता कि "कोई तुम्हारे एक गाल पर चाँटा मारे, तो दूसरा भी आगे कर दो।" यह तो कमज़ोरों का उपदेश है। वैदिक उपदेशों का सार तो यह है–"आततायियों पर दया मत करो, ज्ञान, वीर्य और सम्पत्ति प्राप्त करके अपनी उन्नति करो, अपने तन, मन और धन को राष्ट्र कार्य के लिए सौंप दो, जिस प्रकार समाज द्वेषी या राष्ट्रद्वेषी शत्रुओं को नष्ट करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार मानवता के शत्रुओं का नाश करके मनुष्य मात्र को सुख और शान्ति प्रदान करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। "**सर्वभूतहिते रतः**" होना सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है। यहाँ कोई यह भी कह सकता है कि 'सर्वभूत' में तो शत्रु का भी समावेश हो जाता है, पर उसका यह "कह सकना" ही उसकी मूर्खता का निदर्शक है। मनुष्यों के अहित करने वालों का नाश करके लोगों को सुखी करने का तत्त्व सर्वभूतों के कल्याण में ही निहित है इसीलिए दुष्टों का नाश करके सज्जनों की रक्षा करने वाली विभूतियों का माहात्म्य वर्णित होता है।

इस वैदिक उपदेश का स्मरण करके ही भगवान् राम ने सज्जनों का संरक्षण करते समय प्रजा के शत्रु राक्षसों पर रत्तीभर भी दया नहीं की। भगवान् श्री कृष्ण भी कंस, कालीय और दुर्योधनादि का संहार करते समय पीछे नहीं हटे। यह वेदों के तेजस्वी उपदेशों का ही परिणाम था। एक दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो शत्रुओं को यथाशीघ्र नष्ट करना उन पर एक तरह से अहसान करना ही है क्योंकि लोगों को सताने वाले, उन पर अत्याचार करने वाले मनुष्य मात्र के शत्रु जब तक जीवित रहेंगे, तब तक वे लोगों पर जुल्म करके अपने पापों का घड़ा भरते चले जाएँगे इसलिए उनके द्वारा और अधिक पाप न हों और उनके द्वारा सज्जनों पर और ज्यादा जुल्म न हों, इसलिए ऐसे अमित्रों को इस संसार से जल्दी से जल्दी रवाना कर देना ही मुनासिब है। इस प्रकार दुष्टों को मारना मानों उन पर उपकार करना ही है। जो पुनर्जन्म नहीं मानते वे इस उपकार को नहीं समझ सकेंगे, पर जो पुनर्जन्म को मानते हैं, वे आसानी से मेरी इस बात को समझ लेंगे। शत्रुओं और मित्रों पर उपकार करने की यही पद्धति है। इस पद्धति से सभी का हित होता है। यही वैदिक उपदेशों का लक्ष्य है। जो शत्रुओं का नाश करते हुए और सज्जनों की रक्षा करते हुए अपना कर्त्तव्य करते जाएँगे, वे दोनों लोकों में उच्च पद प्राप्त करेंगे, इसमें शंका नहीं। परमेश्वर इस तेजस्वी बुद्धि को सबमें प्रकाशित करें और उसके कारण सभी के प्रयत्नों से केवल व्यक्ति और राष्ट्र के ही नहीं अपितु समस्त संसार के दुःख दूर हों।

प्रस्तोता–योगेन्द्र वधवा
(1996 अप्रैल 21, को प्रकाशित)

☞ पृष्ठ 05 का शेष

मानव संसाधन ...

एकीकरण ने भारतीय राष्ट्रवाद को कैसे बढ़ावा दिया?'

यह भी अजीब बात है कि दसवीं और बारहवीं कक्षा के इतिहास के प्रश्न पत्र केवल आधुनिक भारत के इतिहास और समकालीन विश्व तक सीमित हैं। प्राचीन भारत के इतिहास या वैदिक काल के इतिहास के बारे में कोई प्रश्न क्यों नहीं है? बोर्ड की परीक्षा में जैसे प्रश्न पूछे जाते हैं, उसी के अनुसार विद्यार्थी पढ़ाई करते हैं। सी. बी. एस. ई. के इतिहास के बारहवीं और दसवीं कक्षा के प्रश्न पत्रों के अध्ययन से यही समझ में आता है कि जो लोग सी. बी. एस. ई. के लिए प्रश्न पत्र बनवाते हैं, वे नहीं चाहते हैं कि हमारे देश के विद्यार्थी भारत के गौरवशाली प्राचीन युग की याद बनाए रखें। इसके विपरीत वे यह चाहते हैं कि विद्यार्थी विदेशी शासकों की प्रशंसा करें। माँ, बाप अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए बहुत बलिदान करते हैं लेकिन दुःख की बात है कि वे केवल यही चाहते हैं कि उनका लड़का या लड़की अच्छे नम्बर पाए। उनको इस बात की चिन्ता नहीं कि अच्छे नम्बर पाने के लिए उनके लड़के–लड़कियों को क्या–क्या याद करना पड़ता है। यह कैसी विडम्बना है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को क्या पढ़ाया जाए, इसके बारे में माँ–बाप की राय का कोई महत्त्व नहीं है। जो बच्चों को जन्म देते हैं और पाल–पोस कर बड़ा करते हैं, उनकी राय का कोई महत्त्व नहीं है। उन विद्यार्थियों की राय का कोई महत्त्व नहीं है जो अपने जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग पढ़ाई में लगा देते हैं और न ही अध्यापकों का, जो विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। किसी विषय में क्या पढ़ाया जाए, इसको शिक्षा मंत्री भी नहीं तय करता है। पर्दे के पीछे कौन लोग तय करते हैं कि विद्यार्थियों को किस विषय में क्या पढ़ाया जाए? यह एक रहस्य है। पर्दे के पीछे ही तैयार किए गए प्रश्न पत्र विद्यार्थियों को मजबूर करते हैं कि वह कौन–कौन सी जानकारियाँ अपने मस्तिष्क में डालें और उन्हें हिफाजत से रखें। इस तरह पर्दे के पीछे अंजान लोग भारत के करोड़ों विद्यार्थियों को प्रभावित कर रहे हैं और उनके जीवन के बहुमूल्य समय का ग़लत उपयोग कर रहे हैं।

कोई भी राजनैतिक पार्टी नहीं चाहेगी कि देश के युवा वर्ग को गुलामी की अच्छाइयाँ रटाई जाएँ और हमारे अमर शहीदों की यादें भुला दी जाएँ। इस समय शिक्षा के बारे में जो नीति है, उसे बनाने में मानव संसाधन मंत्रालय के ऊँचे अफसरों का ही हाथ होगा। शिक्षा नीति में मूल परिवर्तन लाने के लिए सभी राजनैतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों को मिलकर देश के लिए एक दीर्घकालीन नीति तैयार करनी चाहिए और यह तय करना चाहिए कि चाहे कोई भी पार्टी सत्ता में हो या किन्हीं भी राजनैतिक पार्टियों का गठबंधन सत्ता में हो, शिक्षा की दीर्घकालीन नीति वही रहेगी जो सब पार्टियों द्वारा मिल कर बनाई गई हो।

इस प्रसंग में आर्य समाज और डी. ए.वी. के सम्मुख जो चुनौती है उसका उन्हें दृढ़ता से सामना करना होगा और अपने शिक्षा केन्द्रों में इस मनोवृत्ति का सर्वथा परित्याग करना होगा।

☞ पृष्ठ 06 का शेष

महात्मा हंसराज जी ...

देते?" जितनी देर हम आगरा रहे, तो 'अफीम' शब्द याद दिला कर मैं उनको हँसा दिया करता।

***

एक बार महात्माजी, पण्डित लखपतराय जी और प्रिंसिपल मेहरचन्द जी नकोदर आर्यसमाज के महोत्सव पर गए हुए थे। उन दिनों खद्दर का बहुत प्रचार था। पण्डित मेहरचन्द जी ने महात्मा जी से कहा, "हमें कांग्रेस की आज्ञा का पालन करते हुए सारे स्कूलों तथा कालिजों में खद्दर का पहनना आवश्यक कर देना चाहिए; ताकि देश के नेता प्रसन्न हो जाएँ।" महात्मा जी ने उत्तर दिया, "पण्डित जी! आपको अच्छी तरह मालूम है कि हम स्वदेशी के कितने भक्त हैं। मुझे इसमें भी शंका नहीं है कि हम खद्दर पहनें: किन्तु, इससे वे प्रसन्न नहीं होंगे, जिनको आप प्रसन्न करना चाहते हैं। कल को उनकी ओर से यदि यह आज्ञा हुई कि स्कूल और कालिजों को बंद किया जाए तो, क्या आप उनकी आज्ञा का पालन करेंगे? प्रश्न यह नहीं है कि आप खद्दर पहनते हैं या नहीं, प्रश्न यह है कि आप स्वामी दयानंद के चिह्नों पर चलते हुए आर्यसमाज को फैलाना चाहते हैं या कॉंग्रेस का एक भाग बनाना चाहते हैं?"

***

हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर जब महात्मा जी मोहन आश्रम में गए हुए थे तो महात्मा जी हर वक्त इस विचार में रहते कि लाखों की संख्या जो साधुओं की है, यह देश और धर्म की लगन वाले हो जाएँ। इसके लिए मोहन आश्रम में साधुओं के पढ़ने का भी प्रबन्ध किया हुआ था।

***

6 अप्रैल 1929 को दोपहर के समय महाशय राजपाल जी धर्म–वेदी पर बलिदान हुए। 7 अप्रैल प्रातः बजे तक हिन्दू जनता मेयो अस्पताल के 7 बजे से 11 बजे अन्दर और बाहर एकत्रित हुई, किन्तु शव कारण– विशेष से न मिला। 8 अप्रैल को महात्मा हंसराज, पण्डित ठाकुर दत्त तथा अन्य दो तीन आर्य सज्जन एकत्रित होकर डिप्टी कमिश्नर के पास गए और अर्थी साढ़े सात बजे प्रातःकाल हस्पताल से बाहर लाई गई। पौने बारह बजे महात्मा जी ने अपने हाथों से चिता में अग्नि लगाई। पूर्ण वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। 10 अप्रैल बुधवार को सायंकाल 8 बजे के लगभग डी.ए.वी. मिडिल स्कूल विस्तृत मैदान में महात्मा जी के सभापतित्व में महाशय जी के आत्मदान पर हिन्दुओं की एक विशाल शोकसभा हुई महात्मा जी ने सभा के प्रारम्भ में कहा, "मैं आशा करता हूँ कि कोई भी भाषण करने वाले सज्जन किसी का दिल दुखाने वाला वचन न कहेंगे।"

***

एक बार महात्मा जी को नगर में होने वाली टैम्परैन्स सोसाइटी के एक अधिवेशन में सभापति का कार्य करना था। नियत समय से थोड़े से काल पूर्व इतनी मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हुई कि बाजारों में बाढ़–सी आ गईं। कुछ थोड़े से सज्जन सभा स्थान पर पधारे थे। वे इस विचार में थे कि सभा को और किसी समय के लिए स्थगित करना पड़ेगा; क्योंकि प्रधान जी इस वर्षा में न आ सकेंगे। इतने में बिल्कुल ठीक समय पर महात्मा जी हाथ में छाता पकड़े और सिर से पाँव तक भीगे हुए आ पहुँचे।

***

उन दिनों स्कूल शहर के भीतरी भाग में था और आप हैडमास्टर थे। एक दिन स्कूल खुलने के समय वर्षा का प्रकोप हो रहा था। यह शरद् ऋतु थी और गलियाँ और बाजार पिच्छल हो रहे थे। आप टांगे या बरसाती कोट के लिए व्यय न कर सकते थे। आप के पास केवल एक सस्ते मेल का छाता था। दैवयोग से स्कूल में आपकी पहली दो घण्टियाँ खाली थीं। क्षण मात्र के लिए आप के हृदय में विचार आया कि थोड़ा ठहर जाएँ और देरी हो जाने में कोई हर्ज नहीं है।' किन्तु दूसरे ही क्षण में आपके हृदय में विचार आया कि 'यदि मैं आज देरी से पहुँचता तो कल अध्यापक और परसों छात्र देरी से पहुँचेंगे और इस प्रकार स्कूल की व्यवस्था बिगड़ जाएगी।' इसके साथ ही यह भी विचार आपके हृदय में आया कि 'यदि मैं वेतन पाता सेवक होता तो, चाहे कुछ भी हो जाता, मैं स्कूल समय पर अवश्य पहुँचता। मैं वेतन नहीं लेता, इसी कारण मुझ में देरी से पहुँचने के विषय में विचार करने का साहस हुआ है। आपने समय पर स्कूल में पहुँचना अपना कर्त्तव्य समझा। यह निश्चय करके आप घर से चल पड़े और समय से दो मिनट पूर्व स्कूल पहुँच गए।

***

महात्मा जी के सुपुत्र श्री बलराज जी जेल में थे। धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था। एक दिन महात्मा जी के मकान से किसी ने चावल, आटा, दाल इत्यादि की चोरी कर ली। चोरी का समाचार सुनकर महता अमीचन्द जी एडवोकेट उनके पास पहुँचे और कहने लगे कि चोर ने रही सही कसर निकाल दी। महात्मा जी कहने लगे "चोरी किसी चोर ने नहीं की, किसी भूखे ने की है। हम उसकी सहायता सीधे न कर सके। उसका पेट भूखा था। वह वही वस्तुएँ ले गया, जिनसे उसका पेट भर सके।"

***

एक बार श्रीनगर (कश्मीर) आर्यसमाज के उत्सव पर महात्मा जी पधारे तो रियासत के महाराज सर प्रताप सिंह का सन्देश पहुँचा कि "दर्शन दीजिए, मोटर भेज रहा हूँ।" महात्मा जी ने कहला भेजा कि "जिस काम के लिए आया हूँ, वह कर लूँ तो फिर दर्शन करने आऊँगा।"

उत्सव समाप्त हुआ तो महात्मा जी को लेने के लिए महाराजा की मोटर पहुँची। महाराज ने पूछा, "ऐसा कौन सा काम था जिसको पूर्ण किए बिना आप इधर न आ सके।" महात्मा जी ने कहा, "आर्यसमाज की सेवा।"

पत्र/कविता

बैकुंठ शुक्ल

बैकुंठ शुक्ल का जन्म वर्ष 1907 में वैशाली जिले के जलालपुर गाँव में एक किसान परिवार में हुआ था। वे हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के संस्थापकों में से एक योगेन्द्र शुक्ल के भतीजे थे। गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के बाद वे पड़ोस के मथुरापुर गाँव के प्राथमिक स्कूल में शिक्षक हो गए थे लेकिन क्रान्तिकारी मिजाज़ का होने के कारण अध्यापन में उनका बहुत मन नहीं लगता था। वे देश को आज़ादी दिलाने के लिए कांग्रेस द्वारा की जा रही कोशिश से प्रभावित थे और हाजीपुर के गांधी आश्रम में काम कर चुके थे। कांग्रेस सेवा दल ने भी उनको आकर्षित किया था। वर्ष 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया और जेल गए। पटना के कैंप जेल में रहते हुए वे ***हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी*** के सम्पर्क में आए और क्रान्तिकारी बने।

इसी बीच काशी में उनकी मुलाकात चंद्रशेखर आजाद से हुई और उनकी जिंदगी बदल गई। बैकुंठ शुक्ल की पत्नी राधिका देवी भी पति के साथ क्रांन्तिकारी आन्दोलन में कूद पड़ी थी। वर्ष 1931 में भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर षड़यंत्र कांड में सजा के एलान से पूरे देश में गुस्से की लहर फैल गई। क्रान्तिकारी फणीन्द्रनाथ घोष अंग्रेज़ी हुकूमत के दबाव और लालच में आकर ***वादा माफ गवाह*** बन गए थे। उन्हीं की गवाही पर तीनों क्रान्तिकारियों को फाँसी की सजा मिली।

बैकुंठ शुक्ल ने ठान लिया था कि वह फणीन्द्रनाथ घोष को उसके विश्वासघात की सजा देंगे। फणीन्द्र घोष तब बेतिया में थे, जहाँ ब्रिटिश सरकार ने उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध भी किया था। नौ नवंबर 1932 को साइकिल से बेतिया के मीना बाजार में अपने साथी चंद्रमा सिंह के साथ पहुँचकर बैकुंठ शुक्ल ने घोष को कुल्हाड़ी से काटकर अपना वादा पूरा किया। वे फरार हो गए और लंबे समय के बाद छह जुलाई 1933 को गिरफ्तार कर लिए गए। उन्होंने चन्द्रमा सिंह को बचाते हुए घोष की हत्या की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उनके खिलाफ मुकदमा चलाया गया और उन्हें फाँसी की सजा देने का फैसला हुआ। उनकी फाँसी का दिन भी 14 मई तय हो गया।

बैंकुठ शुक्ल की फाँसी का विवरण प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विभूति भूषण दासगुप्त की बंग्ला पुस्तक ***'सेई महावर्षार'*** गंगा जल में मिलता है। फाँसी के दिन पहले यानि 13 मई की पूरी रात वे देशभक्ति के गीत गा रहे थे। टूटी–फूटी बंग्ला में उन्होंने विभूति बाबू से अनुरोध किया था कि एक बार खुदीराम बोस का फाँसी वाला वह गीत, ***हासि हासि पोड़बे फाँसी***, देखते भारतवासी गाइए। कैदियों ने उस रात खाना भी नहीं खाया। 14 मई 1934 के दिन गया सेंट्रल जेल के 15 नंबर वार्ड से फाँसी स्थल की ओर जाते हुए बैकुंठ शुक्ल कह उठे, **'अब चलता हूँ। मैं फिर आऊँगा! देश तो आजाद नहीं हुआ, 'वंदे मातरम्' ।**

उस दिन सरकारी जल्लाद भी मानो थम सा गया था। जेल के सुपरिटडेंट रुमाल हिला–हिलाकर बार–बार संकेत दे रहे थे, लेकिन जल्लाद से लीवर नही खींचा जा रहा था। खुद बैकुंठ शुक्ल ने जब चिल्लाकर कहा कि देर क्यों करते हो, तब जल्लाद की तंद्रा भंग हुई और उसने लीवर खींचा। मात्र 28 साल की उम्र में बैकुंठ शुक्ल ने फाँसी का फंदा चूमा। उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया गया और हाजीपुर में एक आदमकद मूर्ति भी स्थापित की गई है। गया सेंट्रल जेल का नामकरण बैकुंठ शुक्ल के नाम पर करने की सहमति बन चुकी है।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

क्रान्ति वहाँ पर आई होती है।

सड़कों पर कलियों की जहाँ पिटाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।
गूँगी जनता, अंधी सत्ता, सूने गलियारे।
शबनम के ऊपर फेंके जाते हों अंगारे।
बहरों की महफिल में नहीं सुनाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

काम नहीं मिलता जब कर्मशील दो हाथों को।
भूल– भूल अपने दीवानों को, फुटपाथों को।
आज़ादी महलों में बैठ पराई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

गाली–गोली की भाषा में होती हैं बातें।
पता नहीं चलता आता दिन, कब होती रातें।
सत्ता की साँपों के साथ सगाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

रोज आँसुओं से माता बच्चों को नहलाती।
मानव शिशु को भूख मौत की माला पहनाती।
कुत्तों को जब मिलती दूध मलाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

जब दहेज़–दानव सेजों को तोड़–तोड़ देता।
पागल पनघट जब गगरी को फोड़–फोड़ देता।
दुलहन की चूड़ी से दूर कलाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

कोठी–कोठों में जब कुछ भी फर्क नहीं रहता।
संन्यासी के पास धर्म का तर्क नहीं रहता।
आँखें नहीं जहाँ पर लाज लजाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

फसलें जब जल जाती हों विष की बरसातों से।
लूटी जाती हों दुलहन अपनी बारातों से।
कुआँ 'मनीषी' इधर–उधर जब खाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

कुछ तोंदों का बढ़ता जाये रोज–रोज घेरा।
ब्याज वतन के रोम–रोम पर जब डाले डेरा ।
रोगी सारा देश, न जहाँ दवाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

तुलसी, सूर, कबीरा का तन–मन चीरा जाता।
भ्रष्ट गद्य ही जहाँ शुद्ध कविता हो कहलाता।
गीत, ग़ज़ल अपमानित जहाँ रुबाई होती है।
कुछ ही दिन में क्रांति वहाँ पर आई होती है।

सारस्वत मोहन 'मनीषी'
ए–13–14 सेक्टर–11, रोहिणी दिल्ली – 110085
फोन नं.– 011–27572897